जैन धर्म की सामाजिक व्यवस्था

डॉ0 संध्या रानी

एम०ए०, पीएच०डी०

तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार

सार–संक्षेप :

भारतीय सामाज वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज का मेरुदण्ड था। जैन सूत्रों में आर्य और अनार्य जातियों में भेद किया गया है। वैदिक साहित्य के अनुसार दोनों जातियों में मुख्य शारीरिक भेद वर्ण का था। आर्य विजेता गौरवर्ण के थे, जबकि अनार्य उनके अधीन और कृष्णवर्ण के थे। आश्रम व्यवस्था का अन्तिम उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करके मोक्ष प्राप्ति करना था। जैन परम्परा में परम्परागत आश्रम व्यवस्था का महत्व तो नहीं मिलता पर संघ व्यवस्था में साधु–साध्वी एवं श्रावण–श्राविका इन चार घटकों का उल्लेख मिलता है, जिसकी अपनी–अपनी आचार व्यवस्था थी। जीवन में बचपन का काल विद्याध्ययन, यौवन का काल धनार्जन और पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्ति का काल था, तृतीय काल जीवन शोधन का काल था। जैन सूत्रों में आर्यों की पांच जातियां बतायी गयी है :– क्षेत्र–आर्य, जाति, आर्य, कुल आर्य, कर्म आर्य, भाषा आर्य और शिल्प आर्य।

शब्द कुंजी :–भारतीय समाज, जैन परम्परा, वर्ण व्यवस्था, गृहस्थ आश्रम

भूमिका

भारतीय सामाजिक सिद्धान्त के अनुसार, जीवन एक लम्बी यात्रा है जो मृत्यु के बाद भी अनन्त और अविचल रहती है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहता है, यद्यपि उसकी अभिरूचियां समाज की अभिरूचियों के विरूद्ध नहीं जाती। किसी व्यक्ति विशेष द्वारा अपनाया हुआ मार्ग पृथक हो सकता है, लेकिन सबका उद्देश्य एक ही है – अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख।

आश्रमकालीन समाज व्यवस्था

वर्ण और जाति पर आधारिक सामाजिक जीवन चार आश्रमों में बंटा हुआ था। प्रत्येक आश्रम में एक ऐसी अवस्था थी जिसमें कुछ काल तक प्रशिक्षण प्राप्त करके व्यक्ति आगामी व्यवस्था के लिये तैयार हो जाता था। आश्रम व्यवस्था का अन्तिम उद्देश्य आध्यात्मिक विकास करके मोक्ष प्राप्ति करना था। जैन परम्परा में परम्परागत आश्रम व्यवस्था का महत्व तो नहीं मिलता पर संघ व्यवस्था में साधु–साध्वी एवं श्रावण–श्राविका इन चार घटकों का उल्लेख मिलता है, जिसकी अपनी–अपनी आचार व्यवस्था थी। जीवन में बचपन का काल विद्याध्ययन, यौवन का काल धनार्जन और पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्ति का काल था, तृतीय काल जीवन शोधन का काल था। जिसमें व्यक्ति अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से मुक्त होकर आध्यात्मिक साधना की ओर अग्रसर होता था। इसे वानप्रस्थ कहा गया था। चतुर्थ आश्रम

में व्यक्ति आत्मसाधना करता हुआ मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होता था और सभी गृजकार्यों तथा सांसारिक प्रवृत्तियों से उपराम होकर संन्यास ले लेता था।

ब्रह्मचर्य – जीवन के प्रारम्भिक काल बाल्यावस्था में मनुष्य अपने पूर्ण जीवन की रूपरेखा बनाता था। कुमारावस्था व्यक्तित्व विकास का सुनहरा समय था। जिसमें ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये शिक्षा के द्वारा बुद्धि को प्रखर बना कर आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके लौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्त करने की भूमिका तैयार की जाती थी। कुमारावस्था में ही राजकुमारों को जीवनोपयोगी कलाओं को सीखने के लिए आचार्यों के पास भेजा जाता था जहां वे लेख, गणित, अर्थसम्बन्धी ज्ञान, अन्नपान विधि, पशुपक्षियों सम्बन्धी ज्ञान, ज्योतिषज्ञान, अस्त्र–शस्त्रों का ज्ञान, युद्ध, व्यूह रचना के साथ–साथ ललित कलाओं का भी ज्ञान प्राप्त करते थे। आश्रम, गुरूकुल, विहार, मठ आदि शिक्षा ग्रहण करने के स्थान थे। आठ वर्ष के आयु में उपनयन संस्कार के बाद बच्चों को लेखशाला में भेजा जाता था।

गृहस्थाश्रम – यद्यपि जैन परम्परा में ब्रह्मचर्य पर विशेष बल दिया गया है तथापि सामाजिक जीवन के लिये काम–पुरुषार्थ को भी स्वीकार किया गया था। काम के महत्व को स्वीकार करते हुये हरिभद्र कहते हैं कि काम के अभाव में धर्म और अर्थ की सिद्धि सम्भव नहीं है। समरादित्य अपने मित्रों में कामशास्त्र की चर्चा करते हुये काम को त्रिवर्ग का साधन बताते हैं। पुत्रोत्पत्ति से ही गृहस्थ विशुद्ध दान आदि क्रिया के कारण महान धर्म की उपलब्धि पाता है। चतुर्विध संघ का संरक्षण और कुल परम्परा का निर्वाह गृहस्थ द्वारा ही सम्भव है। साधु साध्वियों को आहार, पात्र, औषधि दान देना गृहस्थ के परम कर्तव्य माने गये थे। मनुस्मृति में भी सभी आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को श्रेष्ठ कहा गया है क्योंकि वह तीनों आश्रमों का पालन कर्ता है।

सन्यास आश्रम – जैन परम्परा का श्रमणाचार ही सन्यास आश्रम है जिसमें साधक पांच महाव्रतों का आजीवन पालन करता हुआ क्रमशः आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर होता जाता है। आचार्य के अनुसार विवाहित जीवन द्वारा लोकधर्म का पालन कर लेने पर गृहस्थाश्रम के अनुभवों द्वारा जीवन में परिपक्वता आ जाने पर, पुरुषार्थ के वृद्धिगत हो जाने पर लोकशक्ति का परिज्ञान हो जाने पर और अवस्था के उतार के समय विकारजन्य उपद्रवों के दूर होने पर सन्यास धर्म का ग्रहण करना उचित होता है। राजा–महाराजा एवं सम्पन्न लोग तिथि, मुहूर्त देखकर, दान, महादान, पूजा अष्टाह्निका पूजा आदि करने के बाद परिजनों सहित दीक्षा ले लेते थे। उल्कापतन, बूढ़े बैल का दलदल में फंसना, रोग जरा, मृत्यु आदि का देखना वैराग्य के कारण समझे जाते थे। जैन आगमों के अन्तर्गत चतुर्दश पूर्वों में विद्यानुवाद पूर्व का नाम आता है जिसमें विविध मंत्र और विद्याओं का वर्णन किया गया है। मंखलिक गोशाल को आठ महानिमित्तो में निष्णात कहा है, लोगों के हानि लाभ, सुख दुःख और जीवन मरण के संबंध में वह भविष्यवाणी करता था। कहते हैं कि महानिमित्तों का ज्ञान उसने छह दिशाचरों से प्राप्त किया था। पंचकल्पचूर्णी में उल्लेख है कि आर्य कालक अपने शिष्यों को तपश्चर्या में स्थिर रखने के लिए निमित्तशास्त्र के अध्ययन के वास्ते आजीविकों के पास गये थे। आगे चलकर कालक आचार्य ने प्रतिष्ठान के राजा सातवाहन की सभा में अपनी विद्या का प्रदर्शन किया जिससे राजा ने प्रसन्न होकर उन्हें

आभूषण देने चाहे, लेकिन आचार्य ने लेने से इन्कार कर दिया। आचार्य भद्रबाहु एक महान् नैमित्तिक माने गये हैं जो मंत्रविद्या में कुशल थे। उन्होंने उपसर्गहर स्तोत्र की रचना करके उसे संघ के पास भिजवा दिया जिससे कि व्यंतर देव का उपद्रव शान्त हो सके। पादलिप्त आचार्य का उल्लेख किया जा चुका है। उन्होंने अपनी विद्या के बल से राजा की भगिनी की तंत्र प्रतिमा बनाकर तैयार की थी। उन्होंने प्रतिष्ठान के राजा मुरुण्ड की शिरोवेदना दूर की थी। आर्य खपुट विद्याबल, बाहुबली औरस्य (आभ्यंतर) बल, ब्रह्मदत्त तेजोलब्धि और हरिकेश सहायलब्धि से सम्पन्न माने गये है। श्रीगुप्त आचार्य वृश्चिक, सर्प, मूषक, मृगी, वाराही, काकी और शकुनिका नामक सात विद्याओं के धारी बताये गये है। आचार्य रोहगुप्त भी मयूरी, नकुली, बिडाली, व्याघ्री, सिंही, उलूकी और उलावकी नामक विद्याओं से सम्पन्न थे। उन्होंने अभिमंत्रित रजोहरण के बल से विद्याधरी किसी परिव्राजक के साथ शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त की। सिद्धसेन आचार्य द्वारा योनिप्राभृत की सहायता से अश्व उत्पादन करने का उल्लेख किया गया है। विष्णु कुमार मुनि को तो निग्रथ प्रवचन के अनुपम रक्षक के रूप में स्वीकार किया है।

वर्ण और जाति व्यवस्था –

वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज का मेरुदण्ड था। जैन सूत्रों में आर्य और अनार्य जातियों में भेद किया गया है। वैदिक साहित्य के अनुसार दोनों जातियों में मुख्य शारीरिक भेद वर्ण का था। आर्य विजेता गौरवर्ण के थे, जबकि अनार्य उनके अधीन और कृष्णवर्ण के थे। जैन सूत्रों में आर्यों की पांच जातियां बतायी गयी है :– क्षेत्र–आर्य, जाति, आर्य, कुल आर्य, कर्म आर्य, भाषा आर्य और शिल्प आर्य।

साढ़े पच्चीस आर्य क्षेत्रों का उल्लेख आगे चलकर किया जायेगा। जाति आर्यों में छह सभ्य जातियां बताई गई है : अबष्ठ, कलिन्द, विदेह, वेदग, हरित और चुंचुण (अथवा तुन्तुण)। कुल आर्यों में उग्र, भेग, राजन्य, इक्ष्वाकु (ऋषभदेव के वंशज), ज्ञातृ (नात, प्रथम प्रजापति के वंशज) और कौरव्य (महावीर और शाति जिन के पूर्वज) का उल्लेख है। कर्म आर्यो में दोसिय (दौष्यिक = कपड़े के व्यापारी), सोत्तिय (सौत्रिक = सूत के व्यापारी), कप्पासिया (कार्पासिक = कपास के व्यापारी), सुत्तवेयालिय (सूत के व्यापारी), भंडवेयालिय (करियाने के व्यापारी), कोलालिय (कुम्हार) और णरवाहिणय (पालकी उठाने वाले) का उल्लेख मिलता है। शिल्प आर्यों में तुन्नाग (रफू करने वाले) तन्तुवाय (बुनने वाले), पट्टागार (पटवे), देयड (मशक बनाने वाले), वरुड (पिंछी बनाने वाले अथवा रस्सा बंटने वाले), छव्विय (चटाई बुनने वाले), छत्तकार (छतरी बनाने वाले), वज्झार (बाह्यकार = वाहन बनाने वाले), पोत्थार (मिट्टी के पुतले बनाने वाले), लेप्पकार (पलस्तर की वस्तुएं बनाने वाले), चित्रकार, शंखकार, दंतकार, भांडकार (कंसेरे) जिज्झगार (?) सेल्लगार (भाला बनाने वाले) और कोडिगार (कौड़ियों का काम करने वाले) का उल्लेख मिलता है।

चार वर्ण– जैन धर्म और बौद्ध धर्म में ब्राह्मणों के ऊपर क्षत्रियों का प्रभुत्व स्वीकार करते हुए वर्ण व्यवस्था का विरोध किया है। लेकिन इससे यह सोचना कि महावीर और बुद्ध के काल में जाति और वर्ण भेद सर्वथा नष्ट हो गया था, ठीक नहीं, जैन सूत्रों में बंभण, खत्तिय, वइस्स और सुद्द नाम के चार वर्णों का

उल्लेख है। जैन परम्परा के अनुसार, ऋषभदेव के आश्रित रहने वाले शिल्पी वणिक् कहे जाने लगे, तथा शिल्प का वाणिज्य करने के कारण वे वैश्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। भरत के राज्यकारल में, श्रावक धर्म उत्पन्न होने पर ब्राह्मणों (माहण) की उत्पत्ति हुई ये लोग अत्यन्त सरल स्वभावी और धर्मप्रेमी थे, इसलिए जब वे किसी को मारते पीटते देखते तो कहते – मत मारो (माहण), तभी से ये माहण (ब्राह्मण कहे जाने लगे) भिन्न–भिन्न वर्णों के संमिश्रण से बनी हुई मिश्रित जातियां भी उस समय मौजूद थी।

ब्राह्मण – जैन सूत्रों में साधारणतया ब्राह्मणों के प्रति अवगणना का भाव प्रदर्शित किया गया है और यह दिखाया है कि वे लोग जैन धर्म के विरोधी थे। ब्राह्मणों के लिए धिज्जाइ (धिक्जाति, वैसे यह शब्द द्विजाति से बना है) शब्द का प्रयोग किया गया है। ब्राह्मणों को बुभुक्षा प्रधान कहा है। जैन सूत्रों में, जैसे कहा जा चुका है, ब्राह्मणों की अपेक्षा क्षत्रियों को श्रेष्ठता प्रदान की गयी है। जैन धर्म में कोई भी तीर्थकर क्षत्रिय कुल को छोड़कर अन्य किसी कुल में उत्पन्न हुए नहीं बताये गये हैं। स्वयं महावीर भगवान पहले देवानन्दा नाम की ब्राह्मणी के गर्भ में अवतरित हुए, किन्तु इन्द्र ने उन्हें त्रिषला क्षत्रियाणी के गर्भ में परिवर्तित कर दिया।

लेकिन ध्यान रखने की बात है कि यद्यपि जैन कथा कहानियों में क्षत्रियों की अपेक्षा ब्राह्मणों को निम्न ठहराया गया है, फिर भी समाज में ब्राह्मणों का स्थान ऊंचा था। निशीथचूर्णी में कहा है कि ब्राह्मण स्वर्ग में देवता के रूप में निवास करते थे। प्रजापति ने इस पृथ्वी पर उन्हें देवता के रूप में व्यक्त किया, अतएव जाति मात्र से सम्पन्न इन ब्रह्म बन्धुओं को दान देने से महान् फल की प्राप्ति होती है। जैनसूत्रों में श्रमण (समण) और ब्राह्मण (माह्ण) शब्द का कितने ही स्थलों पर एक साथ प्रयोग किया गया है, इससे यही सिद्ध होता है कि दोनों को आदरणीय स्थान प्राप्त था। यह भी ध्यान देने योग्य है कि महावीर को जैनसूत्रों में माहण अथवा महामाहा, महासाथवाह आदि कहकर सम्बोधित किया गया है।

ब्राह्मणों के संबंध में जैन मान्यता

बौद्धों की भांति, जैन आचार्यों ने भी जन्म की अपेक्षा कर्म के ऊपर अधिक जोर दिया है। जैन सूत्रों का कथन है कि सिर मुंडाने से कोई श्रमण नहीं होता, ओंकार का जाप करने से कोई ब्राह्मण नहीं होता, जंगल में रहने से कोई मुनि नहीं होता, कुश चीवर धारण करने कोई तापस नहीं होता, बल्कि हर कोई समता से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है, वास्तव में कर्म से ब्राह्मण, कर्म से क्षत्रिय, कर्म से वैश्य और कर्म से ही मनुष्य शूद्र कहा जाता है। हरिकेशीय अध्ययन में हरिकेश नामक चांडाल मुनि की कथा आती है। हरिकेश विहार करते–करते एक बार किसी ब्राह्मण के यज्ञवाटक में गये, और यज्ञ के लक्षण बताते हुए उससे कहा 'वास्तविक अग्नि तम है, अग्निस्थान जीव है, श्रुवा (चम्मचचनुमा लकड़ी का पात्र जिसमें आहुति दी जाती है) मन, वचन और काय का योग है, करीष (कंडे की अग्नि) शरीर है, समिधा कर्म है, होम, संयम, योग और शांति है, सरोकार धर्म है और वास्तविक तीर्थ ब्रह्मचर्य है। तात्पर्य यह है कि जैनों ने वर्ण और जाति की जी भरकर निन्दा की, लेकिन फिर भी वे जाति पांति के बंधनों से अपने आपको सर्वथा मुक्त कन कर सके।

उन्होंने जाति–आर्य और जाति जुंगित (जुगुप्सित), कर्म आर्य और कर्म जुंगित तथा शिल्प आर्य और शिल्प जुंगित में भेद बताकर ऊंच–नीच के भेद को स्वीकार किया है।

ब्राह्मणों के विशेषाधिकार –

जैन आगमनों की टीकाओं में उल्लेख है कि भरत चक्रवर्ती ब्राह्मणों को प्रतिदिन भोजन कराते, तथा काकिणी रत्न से चिन्हित कर उन्होंने उन लोगों को दूसरी जातियों से पृथक किया था। राजा लोग दान मान से सम्मानित कर उनके प्रति उदारता व्यक्त करते थे। पाटलिपुत्र के नन्द राजाओं ने ब्राह्मणों को बहुत सा धन देकर उनके प्रति आदर व्यक्त किया था। वररुचि नाम के ब्राह्मणों को राजा की प्रशंसा में ष्लोक सुनाने के बदले पुरस्कार स्वरूप प्रतिदिन 108 दीनारें मिलती थी। राजा ही नहीं अन्य लोग भी ब्राह्मणों को गोदान आदि से सम्मानित करते और उन्हें आदर की दृष्टि से देखते। जन्म–मरण आदि अनेक अवसरों पर ब्राह्मणों की पूछ होती, और भोजन आदि द्वारा उनका सत्कार किया जाता। चाणक्य जब नंदों के दरबार में पहुंचा तो वह कुंडी, दंड, माला (गणेत्तिय) और यज्ञोपवीत लिए हुए था।

अन्य विशेषाधिकार भी ब्राह्मणों को प्राप्त थे। उदाहरण के लिए उन्हें कर नहीं देना पड़ता था और फांसी की सजा से वे मुक्त थे। निधि आदि का लाभ होने पर भी राजा ब्राह्मणों का आदर–सत्कार करता, जबकि वैश्यों की निधि जब्त कर ली जाती, यह बात पहले कही जा चुकी है।

संन्दर्भ सूची

[1] लोभशोकभयक्रोधमानवेगान् विधारयेत।
मर्लज्जयेर्ष्यातिरागाणामभिध्यायाश्च बुद्धिमान।।

[2] परूषस्यातिमात्रस्य सूचकस्यानृतस्य च।
वाक्यास्याकालयुक्तस्य धारयेद्वेगमुत्थितम्।।

[3] . द्रव्यसंग्रह, श्लोक 421।

[4] आउटलाइन्स ऑफ जैनिज्म, पृष्ठ 34।